<Hindi Literature><Children`s Literature><Munshi Premchand><Raja Hardol><1988><Sahotygaar><Jaipur><18-25><1090><Premchand, M-Raja Hardit-CL-O>

उनके सामने कौन-सा मुँह ले कर जाऊँ? नाइन ने नाहक मेरा श्रृंगारकर दिया।
मेरा श्रृंगार देख कर वे खुश भी होंगे? मुझसे इस समय अपराध हुआ है, मैं
अपराधी हूं, मेरा उनके पास इस समय बनाव-श्रंगार करके जाना उचित नहीं। नहीं;
नहीं; आज मुझे उनकेपास भिखारिनी के भेष में जाना चाहिए। मैं उनसे क्षमा
मांगूंगी। इस समय मेरेलिए यही उचित है। यह सोच कर रानी बड़े शीशे के सामने
खड़ी हो गयी। वह अप्सरा-सी मालूम होती थी। सुन्दरता की कितनी ही तसवीरें
उसने देखी थीं;पर उसे इस समय शीशे की तसवीर सबसे ज्यादा खूबसूरत मालूम
होती थी।सुन्दरता और आत्मरुचि का साथ है। हल्दी बिना रंग के नहीं रह सकती
थोड़ीदेर के लिए कुलीना सुन्दरता के मद से फूल उठी। वह तन कर खड़ी हो गई।
लोगकहते हैं कि सुन्दरता में जादू है, और वह जादू जिसका कोई उतार नहीं।
धर्मऔर कर्म, तन और मन सब सुन्दरता पर न्योछावर हैं। मैं सुन्दर न सही,
ऐसी कुरूपाभी नहीं हूं। क्या मेरी सुन्दरता में इतनी भी शक्ति नहीं है कि

महाराज से मेरा अपराध क्षमा करा सके? ये बाहु-लतायें जिस समय उनके गले का
हार होंगी, ये आँखें जिस समय प्रेम के मद से लाल हो कर देखेंगी, तब क्या
मेरे सौन्दर्य की शीतलता उनकी क्रोधाग्नि को ठंडा न कर देगी? पर थोड़ी देर
में रानी को ज्ञान हुआ। आह! यह मैं क्या स्वप्न देख रही हूं! मेरे मन में
ऐसी बातें क्यों आती हैं?मैं अच्छी हूं या बुरी हूँ, उनकी चेरी हूं। मुझसे
अपराध हुआ है, मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए। यह श्रंगार और बनाव इस समय
उपयुक्त नहीं है। यह सोच कर रानी ने सब गहने उतार दिये। इतर में बसी हुई
हरे रेशम की साड़ी अलग कर दी।मोतियों से भरी माँग खोल दी और वह खूब फूट-फूट
कर रोयी। हाय, यह मिलाप की रात वियोग की रात से भी विशेष दुःख-दायिनी
है! भिखारिनी का भेष बना रानी शीशमहलकी ओर चली। पैर आगे बढ़ते थे, पर
मन पीछे हट जाता था! दरवाजे तक आयी, परभीतर पैर न रख सकी। दिल धड़कने
लगा। ऐसा जान पड़ा मानो उसके पैर थर्रारहे हैं। राजा जुझारसिंह बोले,
'कौन है? कुलीना ! भीतर क्यों नहीं आ जाती?'कुलीना ने जी कड़ा करके कहा-
महाराज, कैसे आऊँ? मैं अपनी जगह क्रोधको बैठा पाती हूं।राजा-यह क्यों नहीं

कहती कि मन दोषी है, इसलिए आँखे नहीं मिलाने देता।कुलीना-निस्सन्देह मुझसे
अपराध हुआ है, पर एक अबला आपसे क्षमा का दान माँगती
है।राजा-इसका प्रायश्चित
करना होगा।कुलीना-क्योंकर?राजा-हरदौल के खून से।कुलीना सिर से पैर तक काँप
गयी। बोली-क्या इसलिए कि आज मेरी भूल से ज्योनार के थालों में उलट-फेर हो
गया?राजा-नहीं, इसलिए कि तुम्हारे प्रेम में हरदौल ने उलट-फेर कर दिया?जैसे
आग की आंच से लोहा लाल हो जाता है, वैसे ही रानी का मुँह लाल हो
गया।क्रोध
की अग्नि सद्भावों को भस्म कर देती है, प्रेम और प्रतिष्ठा, दया और न्याय,
सब जल के राख हो जाते हैं। एक मिनट तक रानी को ऐसा मालूम हुआ, मानोदिल और
दिमाग दोनों खौल रहे हैं। पर उसने आत्म-दमन की अन्तिम चेष्टा से अपनेको
संभाला, केवल इतना बोली-हरदौल को मैं अपना लड़का और भाई समझती हूं।राजा उठ
बैठे और कुछ नर्म स्वर से बोले-नहीं, हरदौल लड़का नहीं है, लड़का मैं हूं,
जिसने तुम्हारे ऊपर विश्वास किया। कुलीना, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मुझे
तुम्हारे ऊपर घमण्ड था। मैं समझता था, चांद-सूर्य टल सकते हैं, पर तुम्हारा
दिल नहीं टल सकता। पर आज मुझे मालूम हुआ कि वह मेरा

लड़कपन था।बड़ों ने सच
कहा है कि स्त्री का प्रेम पानी की धार है, जिस ओर ढाल पाता है, उधर ही बह
जाता है। सोना ज्यादा गर्म हो पर पिघल जाता है।कुलीना रोने लगी। क्रोध की आग
पानी बन कर आँखों से निकल पड़ी। जब आवाज बस में हुई, तो बोली-मैं आपके इस
सन्देह को कैसे दूर करूँ?राजा--हरदौल के खून से।रानी--मेरे खून से दाग न
मिटेगा?राजा--तुम्हारे खून से और पक्का हो जायगा।रानी--और कोई उपाय नहीं
है?राजा--नहीं।रानी--यह आपका अन्तिम विचार है?राजा--हाँ, यह मेरा अन्तिम
विचार है। देखो, इस पानदान में पान का बीड़ा रखा है। तुम्हारे सतीत्व की
परीक्षा यही है कि तुम हरदौल को इसे अपने हाथों खिला दो।मेरे मन का भ्रम
उसी समय निकलेगा जब इस घर से हरदौल की लाश निकलेगी।रानी ने घृणा की दृष्टि
से पान के बीड़े को देखा और वह उलटे पैर लौट आयी।रानी सोचने लगी--क्या
हरदौल के प्राण लूं? निर्दोष सच्चरित्र वीर हरदौल की जान से अपने सतीत्व की
परीक्षा दूँ? उस हरदौल के खून से अपना हाथ काला करूं जोमुझे बहन समझता है।
यह पाप किसके सिर पड़ेगा? क्या एक निर्दोष का खून रंग न लायेगा? आह! अभागी
कुलीना! तुझे आज अपने सतीत्व की परीक्षा देने की आवश्यकतापड़ी

है और वह ऐसी
कठिन? नहीं, यह पाप मुझसे न होगा। यदि राजा मुझे कुलटा समझते हैं समझें,
उन्हें मुझ पर सन्देह है, तो हो। मुझसे यह पाप न होगा। राजाको ऐसा सन्देह
क्यों हुआ? क्या केवल थालों के बदल जाने से? नहीं, अवश्य कोईऔर बात है। आज
हरदौल उन्हें जंगल में मिल गया था। राजा ने उसकी कमर में तलवार देखी होगी।
क्या आश्चर्य है, हरदौल से कोई अपमान भी हो गया हो। मेराअपराध क्या है? मुझ
पर इतना बड़ा दोष क्यों लगाया जाता है? केवल थालों के बदल जाने से? हे
ईश्वर! मैं किससे अपना दुःख कहूं? तू ही मेरा साक्षी है। जो चाहे सो हो,
पर मुझसे यह पाप न होगा।रानी ने फिर सोचा-राजा, क्या तुम्हारा ह्रदय ऐसा
ओछा और नीच है? तुम मुझसे हरदौल की जान लेने को कहते हो? यदि तुमसे अधि-कार
और मान नहीं देखा जाता, तो क्यों साफ-साफ ऐसा नहीं कहते? क्यों मरदों की
लड़ाई नहीं लड़ते? क्यों स्वयं अपने हाथ से उसका सिर नहीं काटते और मुझसे
वह काम करने को कहते हो? तुम खूब जानते हो, मैं नहीं कर सकती। यदि मुझसे
जी उकता गया है, यदि मैं तुम्हारी जान की जंजाल हो गयी हूं, तो मुझे काशी
या मथुरा भेज दो। मैं बेखटके चली जाऊँगी। पर ईश्वर के लिए मेरे

सिर इतना
बड़ा कलंक न लगने दो। पर मैं जीवित ही क्यों रहूं? मेरे लिए अब जीवन में
कोई सुख नहीं है अब मेरा मरना ही अच्छा है। मैं स्वयं प्राण दे दूंगी, पर यह महापाप मुझसे न होगा। विचारों ने फिर पलटा खाया। तुमको पाप करना ही
होगा। इससे बड़ा पाप शायद आज तक संसार में न हुआ हो; पर यह पाप तुमको करना
होगा। तुम्हारे पतिव्रत पर सन्देह किया जा रहा है और तुम्हें इस सन्देह को
मिटाना होगा। यदि तुम्हारी जान जोखिम में होती, तो कुछ हर्ज न था। अपनी जान
देकर हरदौल को बचा लेती। पर इस समय तुम्हारेपतिव्रत पर आँच आ रही है। इसलिए
तुम्हे यह पाप करना ही होगा और पाप करने केबाद हँसना और प्रसन्न रहना होगा।
यदि तुम्हारा चित तनिक भी विचलित हुआ,यदि तुम्हारा मुखड़ा जरा भी मद्धिम हुआ,
तो इतना बड़ा पाप करने पर भी तुमसन्देह मिटाने में सफल न होगी। तुम्हारे जी
पर चाहे जो बीते, पर तुम्हें यह पापकरना ही पड़ेगा। परन्तु कैसे होगा? क्या
मैं हरदौल का सिर उतारूँगी? यह सोचकर रानी के शरीर में कँपकँपी आ गयी।
नहीं मेरा हाथ उस पर कभी नहीं उठ सकता!प्यारे हरदौल, मैं तुम्हें विष नहीं
खिला सकती। मैं मानती हूं, तुम मेरे लिए आनन्द से विष बीड़ा खा लोगे। हाँ,

मैं जानती हूं, तुम 'नहीं' न करोगे।पर मुझसे यह महापाप नहीं हो सकता, एक
बार नहीं, हजार बार नहीं हो सकता।हरदौल को इन बातों की कुछ खबर न थी। आधी
रात को एक दासी रोती हुई उसके पास गयीऔर उसने उससे सब समाचार
अक्षर-अक्षर
कह सुनाया। वह दासी पान-दानले कर रानी के पीछे-पीछे राजमहल से दरवाजे तक
गयी थी और सब बातें सुन कर आयीथी। हरदौल राजा का ढंग देख कर पहले ही ताड़
गया था कि राजा के मन में कोई-न-कोईकाँटा अवश्य खटक रहा है। दासी की बातों
ने उनके सन्देह को और भी पक्काकर दिया। उसने दासी से कड़ी मनाही कर दी
कि सावधान! किसी दूसरे के कानों में इन बातों की भनक न पड़े और वह स्वयं
मरने को तैयार हो गया।हरदौल बुन्देलों की वीरता का सूरज था। उसके भौंहों
के तनिक इशारे से तीनलाख बुन्देले मरने के लिए इकट्ठे हो सकते थे। ओरछा उस
पर न्यौछावर था।यदि जुझारसिंह खुले मैदान में उसका सामना करते, तो अवश्य
मुंह की खाते।क्योंकि हरदौल भी बुन्देला था और बुन्देले अपने शत्रु के साथ
किसी प्रकारकी मुंह देखी नहीं करते, मरना-मारना उनके जीवन का एक अच्छा दिल
बहलाव है।उन्हें सदा खून की प्यास रहती है और वह प्यास कभी

नहीं बुझती।
परन्तु उस समयएक स्त्री को उसके खून की जरूरत थी और उसका साहस उसके कानों
में कहताथा कि एक निर्दोष और सती अबला के लिए अपने शरीर का खून देने में
मुँह न मोड़ो।यदि भैया को यह सन्देह होता कि मैं उनके खून का प्यासा हूं
और उन्हें मार कर राज पर अधिकार करना चाहता हूं, तो कुछ हर्ज न था। राज्य
के लिए कत्ल और खून, दगा और फरेब सब उचित समझा गया है। परन्तु
उनके इस
सन्देह का निपटारा मेरे मरने के सिवा और किसी तरह नहीं हो सकता। इस समय
मेरा धर्म है कि अपना प्राण दे कर उनके इस सन्देह को दूर कर दूँ। उनके मन
में यह दुखाने वाला सन्देह उत्पन्न करके भी यदि मैं जीता ही रहूं और मन
अपने मन की पवित्रता जताऊं तो मेरी ढिठाई है। नहीं, इस भले काम में अधिक
आगा-पीछाकरना अच्छा नहीं। मैं खुशी से विष का बीड़ा खाऊंगा। इससे बढ़ कर
शूरवीर की मृत्यु और क्या हो सकती है।क्रोध में आकर मारू के भय बढ़ाने
वाले शब्द सुन कर रणक्षेत्र में अपनी जान को तुच्छ समझना इतना कठिन नहीं
है। आज सच्चा वीर हरदौल अपने ह्रदय के बड़प्पनपर अपनी सारी वीरता और साहस

न्यौछा-वर करने को उद्यत है।दूसरे दिन हरदौल ने खूब तड़के स्नान किया।
बदन पर अस्त्र-शस्त्र सजा मुसकुराताहुआ राजा के पास गया। राजा भी सो कर
तुरन्त ही उठे थे, उनकी अलसायी हुईआँखें हरदौल की मूर्ति की ओर लगी हुई
थीं। सामने संगमर्मर की चौकी पर विष मिला पान सोने की तश्तरी में रखा हुआ
था। राजा कभी पान की ओर ताकते और कभी मूर्ति की ओर, शायद उनके विचार ने इस
विष की गाँठ और उस मूर्ति में एकसम्बन्ध पैदा कर दिया। उस समय जो हरदौल
एकाएक घर में पहुंचे तो राजा चौंकपड़े। उन्होंने संभल कर पूछा, 'इस समय
कहाँ चले?'हरदौल का मुखड़ा प्रफुल्लित था। वह हँस कर बोला, 'कल आप यहां
पधारे हैं,इसी खुशी में मैं आज शिकार खेलने जाता हूं। आपको ईश्वर ने अजित
बनायाहै, मुझे अपने हाथ से विजय का बीड़ा दीजिए।'यह कह कर हरदौल ने चौकी
पर से पान-दान उठा लिया और उसे राजा के सामनेरख कर बीड़ा लेने के लिए हाथ
बढ़ाया। हरदौल का खिला हुआ मुखड़ा देख कर राजा की ईर्ष्या की आग और भी भड़क
उठी-दुष्ट, मेरे घाव पर नमक छिड़कने आयाहै!मेरे मान और विश्वास को मिट्टी
में मिलाने पर भी तेरा जी न भरा! मुझसे विजयका बीड़ा मांगता है! हाँ,

यह विजय का बीड़ा है। पर तेरी विजय का नहीं, मेरी विजय का।इतना मन में
कह कर जुझारसिंह ने बीड़े को हाथ में उठाया।वे एक क्षण तक कुछ सोचते रहे,
फिर मुसकुरा कर हरदौल को बीड़ा दे दिया। हरदौलने सिर झुका कर बीड़ा लिया,
उसे माथे पर चढ़ाया, एक बार बड़ी ही करुणा के साथचारों ओर देखा और फिर मुंह
में रख लिया। एक सच्चे राजपूत ने अपनापुरुषत्व दिखा दिया। विष हलाहल था,
कण्ठ के नीचे उतरते ही हरदौल के मुखड़ेपर मुर्दनी छा गयी और आँखें बुझ
गयीं। उसने एक ठण्डी सांस ली, दोनों हाथजोड़ कर जुझारसिंह को प्रणाम किया
और जमीन पर बैठ गया। उसके ललाट पर पसीनेकी ठण्डी-ठण्डी बूँदे दिखाई दे रही
थीं और सांस तेजी से चलने लगी थी, पर चेहरेपर प्रसन्नता और सन्तोष की झलक
दिखाई देती थी।जुझारसिंह अपनी जगह से जरा भी न हिले। उनके चेहरे पर
ईर्ष्या
से भरी हुईमुस्कुराहट छायी हुई थी, पर आँखों में आँसू भर आये थे। उजेले और
अँधेरे कामिलाप हो गया था।